संपादकीय

माता बनाम मातृत्व

परंपरागत तौर पर मातृत्व को नारी जीवन की चरम सार्थकता कहा जाता है और इसके बिना उसका जीवन अधूरा माना जाता है। लेकिन क्या संतान की उत्पत्ति के बाद माता बन जाना ही मातृत्व के लिए यथेष्ट है? अधिकतर स्त्री-पुरुष संतान को जन्म देकर माता-पिता बन ही जाते हैं और फिर मातृत्व-पितष्त्व का भाव उनके अंदर स्वतः प्रस्फुटित होता है। इस आधार पर जो स्त्री-पुरुष किसी कारण से संतानोत्पति से वंचित रह जाते हैं, क्या वे स्वाभाविक रूप से मातष्त्व-पितष्त्व भाव से रहित ही होंगे? इसकी परख से पूर्व इस बात की तहकीकात आवश्यक है कि मातष्त्व या पितष्त्व वास्तव में है क्या? प्रथमदृष्ट्या यह बात चहुँओर प्रचलित है कि संतान होना मातृत्व के लिए एक अनिवार्य शर्त तो है। इस शर्त पर संतानहीन स्त्रियॉं पहली नजर में ही मातृत्व जैसे परम पद से छँटकर रह जाती हैं और बाकी को सहज रूप से मातष्त्व का गौरव उपलब्ध हो जाता है। लेकिन वास्तव में यह एक नितांत सतही मान्यता है। जैसे गुरु बनने से गुरुत्व और शिष्य बनने से शिष्यत्व, भाई होने से भ्रातृत्व, पुत्र को पुत्रत्व, पति या पत्नी बनने पर पतित्व या पत्नीत्व भाव भी आ जाना जरूरी नहीं है, वैसे ही माता बन जाने पर मातृत्व भी स्वयमेव प्राप्त हो ही जाए - यह आवश्यक नहीं है। ठीक है कि मातृत्व को बाकी की तरह तौला नहीं जा सकता। माता की तुलना किसी अन्य रिश्ते से नहीं की जा सकती। संसार में यही दिखता रहा है कि पुत्र ही कुपुत्र साबित होता है, माताएँ कुमाता नहीं बनतीं या अपवादस्वरूप ही बनती हैं?

आजकल माताओं के कुमाता बनने की खबरें भरपूर सामने आ रही हैं और धीरे-धीरे इनकी संख्या बढ़ती जा रही है। एक से बदतर एक घटना, जिससे न केवल मातृत्व बल्कि पूरा समाज कलंकित होता है। बच्चा चुराना, बच्चे को लावारिस छोड़ देना, सीढ़ियों से फेंक देना, गला घोंटकर मार देना, पारिवारिक विवाद में बच्चे को प्रताड़ित करना, इश्क के चक्कर में बच्चे का कत्ल करना-कराना तथा धन-संपत्ति व तथाकथित प्रेम-संबंध निभाने के लिए संतान की हत्या जैसी घटनाएँ दिनोंदिन बढ़ती जा रही हैं। कन्या भ्रूण हत्या, अवैध भ्रूण-संतान हत्या आदि तो आम बात है ही। इन घटनाओं को देखकर कभी नहीं कहा जा सकता कि माता कुमाता नहीं हो सकती। अत्यल्प ही सही, इस मिथ के उदाहरण सदा से मिलते रहे हैं। मैथिली शरण गुप्त ने 'साकेत' में स्वयं कैकेयी के मुख से कहलवाया है -

कहते आते थे यही सभी नरदेही,
माता न कुमाता, पुत्र कुपुत्र भले ही।
अब कहें सभी यह हाय! विरूद्ध विधाता,-
है पुत्र पुत्र ही, रहे कुमाता माता।

महाभारत के कर्ण और शिशुपाल के चरित्र से कौन परिचित नहीं है। चेदीनरेश शिशुपाल का जन्म विचित्र रूप में लगभग राक्षस की तरह तीन ऑंख और चार हाथ के साथ हुआ था। इससे दुखी उसकी मॉं श्रुतश्रवा ने नवजात को फेंकवाना चाहा, लेकिन तत्काल आकाशवाणी हुई कि इसे मत फेंको, यह बालक बहुत पराक्रमी राजा होगा। मॉं ने यह बात मान ली और लगे हाथ पूछ लिया कि आपने यह बताकर इसकी प्राण रक्षा कर दी तो कष्पा करके यह भी बताते जाइए कि जिस बालक का जन्म इस प्रकार हुआ है, उसकी मष्त्यु कैसे होगी? इस पर उत्तर मिला कि जिसकी गोद में जाते ही इसका तीसरा नेत्र खत्म हो जाएगा, उसी के हाथों इसका वध होगा। बालक के जन्म का समाचार सुनकर लोग देखने आने लगे। इसी सिलसिले में कष्ष्ण और बलराम भी आए। कृष्ण की गोद में जाते ही शिशुपाल का तीसरा नेत्र नष्ट हो गया। उसकी मॉं ने कृष्ण से कहा कि यह तुम्हारा फुफेरा भाई है और तू इसकी हत्या करेगा? इस पर कृष्ण ने पूछा कि यह किसने बताया? श्रुतश्रवा ने कहा कि जन्म के समय यही आकाशवाणी हुई थी। इस पर कृष्ण ने कहा कि माता होकर भी आपने जन्म की खुशी के अवसर पर मष्त्यु का कारण क्यों पूछा? अच्छा होता यदि आप जीवन के इस रहस्य को न जानतीं। दूसरी तरफ,

कर्ण को उसकी कुंती जैसी माँ ने बहवा दिया था। बहुत बाद में महाभारत युद्ध के आरंभ से ठीक पहले जब कुंती ने स्वयं जाकर अपनाना चाहा तो कर्ण का मातष्त्व पर व्याख्यान काबिलेगौर था। दिनकर जी के शब्दों में -

उमड़ी न स्नेह की उज्ज्वल धार हष्दय से
तुम सूख गई मुझको पाते ही भय से,
पर राधा ने जिस दिन मुझको पाया था
कहते हैं उसको दूध उतर आया था।

कुंती माँ बनकर भी कर्ण के संदर्भ में मातृत्व से वंचित है, दूसरी ओर अधीरथ की राधा बिना पुत्र जने भी मातृत्व जैसे विराट भाव से युक्त है। वास्तविकता भी यही है कि मातृत्व से जुड़े दायित्वों को यथासंभव निभाने का ईमानदार प्रयास करना जरूरी है, पर उससे भी ज्यादा जरूरी किसी भी स्थिति में इससे जुड़ी मर्यादाएँ तोड़ने और प्रतिकूल आचरण करने की लगातार हेठी शोभनीय, दर्शनीय, ग्रहणीय नहीं बनाना है।

रिजल्ट से पहले और बाद में

परीक्षा संपन्न होने से लेकर परीक्षा-फल निकलने तक का समय विद्यार्थी के लिए कौतूहल, उमंग और आशाओं-आकांक्षाओं से भरा होता है। मन में कई तरह के भाव, विचार, सपने घुमड़ते हैं। परीक्षा-फल तो परीक्षा-फल है। परीक्षा संपन्न होने के बाद वह परीक्षार्थी के हाथ से निकलकर परीक्षक के अधिकार-क्षेत्र में चला जाता है। कुशाग्र बुद्धि के विद्यार्थी की भी परीक्षाएँ कितनी ही अच्छी हुई हों, मन में आशंकाओं के बादल उमड़ने स्वाभाविक हैं। परीक्षा और उसके परिणाम के बीच का यह समय बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। इसके समुचित उपयोग से बाल जीवन ही नहीं, वरन् पूरी जिंदगी जीने के लिए मानसिक मजबूती एवं समर्द्धि हासिल हो सकती है और भविष्य की कठिनाइयों से जूझने के लिए प्रतिरोधक सामर्थ्य बढ़ सकता है। यों इस दरम्यान विद्यार्थी परीक्षा के दबाव से मुक्त होकर थकान उतारता है; राहत, आराम और चैन-सुकून का अनुभव करता है। यह उचित है कि वह पढाई-लिखाई से इतर तात्कालिक रूप से बाकी सारे काम निबटाए, घूमे-फिरे, खेले-कूदे, मौज-मस्ती करते हुए रुचिकर, पर हितकर मनोरंजन करे।

बचपन की याददाश्त काफी अच्छी होती है। पंद्रह-सोलह की उम्र तक पढ़े-समझे व कंठस्थ किए तथ्य, तर्क, विचार सारी उम्र याद रहते हैं, जबकि बाद का पढ़ा समझ-शक्ति बढ़ने के बावजूद जरूरत समाप्त होते जाने के साथ प्रायः जेहन से ओझल होता जाता है। वही चीजें ध्यान में रह जाती हैं, जो बचपन की होती हैं या फिर हमेशा उपयोग में रहती हैं। इसलिए बालमन की इस शक्ति को पहचान कर अभिभावक व शिक्षक से यह उम्मीद की जाती है कि वे भावी जीवन के लिए उपयोगी लगने वाली चीजों को बालक के मन-मस्तिष्क में आत्मसात कराने का प्रयत्न करें। स्वयं बालक को इस बात का बोध या एहसास होना अधिक उपयोगी होगा। उतीर्ण होने पर पिछली कक्षा और विद्यालय से हर्ष-आनंद भरे विछुड़न का गम लिए अगली कक्षा व विद्यालय, महाविद्यालय में जाने की उत्सुकता रहती है। चूँकि छात्र फिर कभी निवर्तमान कक्षा में नहीं बैठ पाएगा, इसलिए यदि पिछली कक्षा की कोई चीज समझ से बाहर रह गई हो तो उन दीर्घोपयोगी तत्वों-तथ्यों को याद कर समझ लेना आवश्यक होता है। पाठ्यक्रम में आयु और वर्ग के अनुरूप क्या पढ़ना-पढ़ाना है - इसका पूरा ख्याल रखा ही जाता है, फिर भी पाठ्यक्रम की हो या उससे बाहर की, जीवनोपयोगी बातों को सिखाना बड़ा काम का साबित होता है।

अनुतीर्ण करने पर बालमन को आघात लगता है, किंतु आजकल फेल का गम कम, परीक्षा में कम नंबर कम रह जाने की कसक ज्यादा परेशान करती है। पढ़ना या कोई काम करना हमारे वश में हो सकता है, लेकिन उसका परिणाम अपने हाथ में नहीं होता। इसलिए रिजल्ट मनमाफिक ही हो - जरूरी नहीं है। यह आशाओं-आकांक्षाओं से तय नहीं होता, यहाँ तक कि परिश्रम, परफार्ममेंस के सदैव उचित मूल्यांकन का कोई विधि-विधान नहीं है। अच्छे रिजल्ट पर खुशी तथा खराब

पर दुख होना लाजिमी है, लेकिन एक सीमा से ज्यादा यह ठीक नहीं है। परीक्षा में कम नंबर लाने वालों ने ही नहीं, लगातार कई-कई परीक्षाओं में असफल होने वालों तक ने दुनिया के इतिहास में ऐसे-ऐसे कार्य किए हैं, जैसे कार्य टॉपरों ने आज तक नहीं किए। अक्सर अनुतीर्ण होते रहने वाले एक विद्यार्थी की सफलता का चित्रण करते हुए एडमंड कैपुर ब्रोड्स ने लिखा है -''एक युवक ऐसा था जो स्कूल में बड़ा ढीला-ढाला और अयोग्य विद्यार्थी था। कक्षाओं में अनुपस्थित रहता और बहुत कम पास हो पाता। उसने सेना में भर्ती होने की कोशिश की, पर डॉक्टरी जाँच में रह गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी उसे सफलता नहीं मिली। कुछ दिनों बाद न जाने किस विघ से वह भर्ती हो गया। यह खबर सुनकर हमने सोचा कि कुछ दिनों में वह अंग-भंग होकर लौट आएगा। किंतु युद्ध के भयंकर मोर्चे पर उसने जो साहस दिखाया, उसे सुनकर हम सब दंग रह गए। उसने जलते बम को उठाकर नाके से दूर फेंका और गोलियों की बौछार के बीच कुछएक साथियों की जान बचाई। यह वही युवक था, जो कुछ दिन पहले तक निरुत्साही, निकम्मा और असफल समझा जाता था।'' इसी प्रकार अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने निश्चय कर रखा था कि भले ही कुछ भी हो जाए, उन्हें अपने कार्यों तथा प्रयत्नों में सफलता मिले या न मिले, लोग भले ही उनके विरोधी बन जाएँ और उन्हें अपना सब कुछ खो देना पड़े, लेकिन वे अपने आदर्शों-सिद्धांतों पर सदैव अडिग-अटल बने रहेंगे और इसी दष्ढ़ता की बदौलत रूजवेल्ट की ईमानदारी न केवल अमेरिका में, बल्कि पूरे विश्व के इतिहास के स्वर्णिम पष्ष्ठ पर अंकित है।

भगवद्गीता में श्रीकष्ष्ण ने बताया है कि दुखों के आने पर उद्वेग-शोक से मुक्त और सुखों की प्राप्ति पर सर्वथा निस्पष्ह यानी इच्छारहित हो जाने वाले व्यक्ति की बुद्धि स्थिरबुद्धि कहलाती है। इस बुद्धि को अर्जित करना ही असली पढ़ाई है -

दुखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेसु विगतस्पष्हः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।

दशरथ की मष्त्यु पर मुनि वशिष्ठ भरत को समझाते हैं -

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलख कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस बिधिहाथ।।

अर्थात् कुछ चीजें जैसे लाभ-हानि, जीवन-मरण, यश-अपयश अपने चरम-उदात्त रूप में लाख चाहने-करने पर भी एक या अनेक मनुष्यों के अधीन नहीं हो सकता। आदमी का वश उसके क्षुद्र रूप पर ही चलता है। इसलिए दवा से आगे दुआ की जरूरत पड़ती है, यह दुआ ईश्वरीय शक्ति के यहाँ तो काम आ सकती है, पर आज के आदमी और उसकी लौकिक सत्ता के समक्ष इसका प्रभाव लगभग नहीं होता। इसलिए परिणाम से विचलित नहीं होना चाहिए और न ही पढ़ाई-कर्म में अन्यमनस्कता दिखानी चाहिए।